# न्यायिक अतिसंधान

हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने कृषि कानूनों के कार्यान्वयन को स्थगित करने का आदेश दिया है। इसके साथ ही एक समिति का गठन करने का भी आदेश दिया है, जो किसानों और सरकार के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाएगी। किसानों ने समिति के प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। उच्चतम न्यायालय ने कानूनों की संवैधानिकता पर सवाल उठाए बिना ही कुछ समूहों को राजनैतिक समझौते के लिए नियुक्त कर दिया है। तो क्या न्यायालय का यह कदम कार्यपालिका के अधिकारों पर अतिक्रमण कहा जा सकता है ?

- इस संबंध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि जिन तीन याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए न्यायपालिका ने आदेश दिए हैं उनमें से एक याचिका कानूनों की सवैधानिकता से जुडी थी और दूसरी दो किसान-विरोध से जुड़ी थी। किसी में भी किसानों और सरकार के बीच मध्यस्थता की मांग नहीं की गई थी।

  न्यायालय ने सुनवाई करते हुए मौखिक रूप से आंदोलन को संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत न्यायपूर्ण ठहराया और सुरक्षा के लिए दिल्ली पुलिस को सक्षम बता दिया। इसके बावजूद न्यायालय ने एक कदम आगे बढकर मध्यस्थता का आदेश दिया। उसका ऐसा कदम यह दिखाता है जैसे कि वह सरकार से बेहतर कदम उठा सकती है।

  हमारे संवैधानिक ढांचे में कृषि और उपज को संविधान की सातवीं अनुसूची में 14,18,30,46,47,48 धाराओं के अंतर्गत राज्य सरकारों के अधीन विषय माना है। अतः केंद्र सरकार इन पर कोई विधेयक कैसे पारित कर सकती है ?

  फिर भी न्यायालय ने इन कानूनों की वैधानिकता पर सवाल उठाने की बजाए इनके अमल को इसलिए रोका, क्योंकि ये कानून किसानों की भावनाओं को ठेस पहुँचा रहे हैं। न्यायालय का यह कथन अनोखा है।

सामान्यतः किसी कानून को स्थगित करने के लिए न्यायालय न्यायिक और संवैधानिक तर्क देता है। परंतु जब न्यायालय किसी संसदीय कानून को इसलिए स्थगित करता है कि उससे किसी एक समूह के लोगों की भावनाएं आहत हो रही हैं, तो इसका अर्थ है कि उसके पास इसके स्थगन के लिए कोई स्पष्ट न्यायिक आधार नहीं है। तो क्या न्यायालय को न्यायिक से ज्यादा प्रशासनिक चिंताओं के चलते ऐसा करना पड़ा है ?

- भारत में लगभग सभी राजनैतिक विवाद जल्द ही कानूनी विषयों में बदल जाते हैं। हैरानी इस बात की है कि इस विवाद से पहले न्यायालय के समक्ष धारा 370 का उन्मूलन, नागरिकता संशोधन विधेयक जैसे कई विवादास्पद कानून आए, जिन पर सुनवाई की कोई न तो जल्दबाजी हुई और न ही इन पर स्थगन आदेश दिया गया। जबकि अयोध्या मामले पर न्यायालय ने ऐसे निर्णय दिया था, जैसे वह इस हेतु दृढ़ निश्चयी है। तो क्या न्यायालय अपनी न्यायिक समीक्षा के संवैधानिक उत्तरदायित्व से मुँह मोडने लगा है ?

- हमारे संविधान निर्माताओं ने संसदीय प्रभुता के ब्रिटेन के संविधान के प्रारूप को छोडकर भारतीय न्यायपालिका को यह अधिकार दिया कि वह संसदीय कानूनों को निरस्त कर सके। अनुच्छेद 356 के मामले में न्यायपालिका ने इस अधिकार का उपयोग भी किया है। एस.आर. बोम्मई बनाम केंद्र सरकार के मामले में भारतीय न्यायपालिका की शक्ति को विश्व के सबसे शक्तिशाली न्यायालयों में से एक माना गया था। परंतु 2015 के बाद से न्यायालय का रवैया बदल गया है।

  कार्यपालिका के मामलों में दखल देती न्यायालय अब संदेह के घेरे में आती जा रही है। इसके औचित्य को समझना मुश्किल है। उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में सरकार के ये महत्वपूर्ण स्तंभ अपनी गरिमा को बनाए रखने हेतु अपने दायरे में ही अपनी शक्तियों का न्यायपूर्ण इस्तेमाल करेंगे।

**'द हिंदू' में प्रकाशित लेख पर आधारित। 22 जनवरी 2021**